P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-1) May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

हिन्दी साहित्य में रक्षा विषयक संदर्भ

दीपक कुमार सिंह
पूर्व शोध छात्र रक्षा एवं स्त्रातेजिक अध्ययन विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद, उ0प्र0, भारत

सारांश

हिन्दी साहित्य में प्राचीन काल से ही देश भक्त कवियों की एक परम्परा रही है। भक्ति युगीन कवियों की रचनाओं में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से राष्ट्रीय भावनाएँ प्रदीप्त हुई। रीतिकाल में भूषण जैसे महान राष्ट्र कवि हुए। आधुनिक काल में मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर जी, सोहनलाल, द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी प्रभीति कवियों ने न केवल अपनी मातृभूमि परख कविताओं से स्वंत्रता संग्राम के सेनानियों को प्रोत्साहित किया अपितु स्वयं भी देश को पराधीनता के पाश से मुक्त कराने में सक्रिय रूप से सहयोग किया।

मुख्य शब्द : शूरस्य, समर, उध्दायल, चेतक का चबूतरा, मनोबल, डगमग, उत्साह, आत्मविश्वास, आत्मगौरव।

प्रस्तावना

रक्षा अध्ययन में युद्ध के कई सिद्धान्त बताये गये हैं, उनमें से एक सिद्धान्त है 'मनोबल को बनाये रखना'। सैन्य कमाण्डरों, देश के शीर्ष रणनीतिकारों एवं योजनाकारी के सामने एक महत्वपूर्ण प्रश्न सदैव बना रहता है कि कैसे सेना का मनोबल ऊँचा रखा जाय? युद्ध कोई खेल तो है नहीं, यह जीवन एवं मृत्यु का वास्तविक क्षेत्र है। मौत के सामने मनोबल को किस प्रकार ऊँचा रखा जाय इस प्रश्न पर वास्तविकता के धरातल पर विचार किया जाना चाहिए।

साहित्यावलोकन

हिन्दी साहित्य एवं रक्षा अध्ययन दो भिन्न चिन्तन परम्परा के विषय रहे हैं। लेकिन ऐसा नहीं है कि दोनों एक दूसरे से पूर्णतया भिन्न रहे हैं। साहित्य में अनेक ऐसे संदर्भ मिलते हैं जो इन दोनों विषयों को आपस में जोड़ते हैं। इस संदर्भ में श्याम नारायण पाण्डेय जी की 'जौहर', रामधारी सिंह दिनकर की 'कुरुक्षेत्र', विष्णु दन्त शर्मा की 'रामासुर संग्राम' आदि के अध्ययन से इन दोनों विषयों हिन्दी साहित्य एवं रक्षा अध्ययन के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया।

अध्ययन काल

प्रस्तुत शोध पत्र मार्च–2018 से अगस्त 2018 की समयावधि के मध्य तैयार किया गया।

विषय विस्तार

साहित्य समाज का सजग प्रहरी होता है वह न केवल समाज का दर्पण होता है अपितु दिशा बोधक एंव मार्गदर्शक भी होता है। वह साहित्यकार ही है जो समाज की विंसगतियों, कमियों एवं सरकार की असफलताओं का निष्पक्ष एवं निर्विकार भाव से समालोचना करता है तथा समाज एवं सरकार को सही दिशा में अग्रसर होने के लिए प्रेरित करता है हिंदी साहित्य की अनेक ऐसी कृतियां हैं जो एकता, त्याग, समर्पण एवं देश रक्षा में बलिदान की प्रेरणा देते हैं।

राष्ट्र को जागरूक रखने एवं देशवासियों का मनोबल ऊँचा उठाने में सदैव से कवियों का विशेष स्थान रहा है। देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुरूप कविताओं का सृजन हुआ। आदिकाल में चन्दवरदायी या जगनिक की रचनाएं इसी कोटि में आती हैं।

चन्दवरदायी पृथ्वीराज के समकालीन हों या न हों पर यह विश्वास अभी तक अडिग है कि 'पृथ्वीराज रासो' चंद की ही रचना है। यह 'रासो' 69 समयों या सर्गों में सम्पन्न हुआ जिसके अंतिम 10 सर्ग चंद के पुत्र जल्हण ने पूरे किये। चंद और अन्य कवि उस समय अपने–अपने राजाओं के साथ युद्ध में सैनिकों के उत्साह वर्धन के लिये स्वयं भी जाया करते थे। रासों में चन्द की विद्वता, वीरता एवं मित्र–भक्ति का परिचय प्रचुर परिमाण में मिलता है।

हिन्दी की प्रारम्भिक रचनाओं का जन्म युद्ध की गोंद में युद्धप्रिय जाति की यश–गाथा गाने के लिये हुआ, युद्ध–भावना को जन्म देने और जगाने के लिये हुआ, ऐसे व्यक्तियों के द्वारा हुआ जो केवल लेखनी उठाना ही नहीं, खड्ग

खींचना भी जानते थे। जो स्याही में कलम डुबाना ही नहीं छाती में भाले भी भौंकना जानते थे। वे केवल राजदरबार में अपनी वाणी को ही न छोड़ते थे, रणभूमि में भी सैनिकों में उत्साह भरते थे। वह काल एक ओर विदेशी लुटरों और राज्य लोलुपों के भयंकर आतंक और दूसरी ओर राजपूतों की आपसी कलह और विद्वेश की अग्नि में उनकी समृद्धि के स्वाहा होने का था। उस समय वीरता ही सुहाती और सुनी जाती थी। परिणामस्वरूप जो वीर रसात्मक रचनायें अस्तित्व में आयीं उनकी प्रधानता के कारण यह काल वीरगाथा काल कहलाया (विद्वानों ने इसका विस्तार सम्वत् 1050 से 1375 तक) माना है। भूपति (राजा) उस समय कवियों का मान करते थे और उन्हें अपना आश्रयदान देते थे। भारत में उस समय दो राजा प्रसिद्ध थे। एक कन्नौज के अधिपति राठौरवंशी महाराजा जयचंद्र और दूसरे अजमेर के सम्राट चौहानवंशी राजा पृथ्वीराज। महोबे के चन्देल परमाल की भी उनके दो वीर सामन्तों आल्हा और ऊदल के कारण बड़ी ख्याति थी।

काव्य शास्त्र के आद्याचार्य भरत ने श्रृंगार, रौद्र तथा वीभत्स के साथ वीर रस को भी मूल रस माना है। श्रृंगार के बाद यह सबसे अधिक प्रभावित करने वाला रस है। मनोवैज्ञानिकों ने उत्साह को मूल भाव के रूप में नहीं माना किन्तु उत्साह एवं रति दोनों मानव–प्रकृति की प्रबल प्रवृत्तियां हैं। यह कारण है कि प्राचीन साहित्य, लोकगाथा और लोकसाहित्य में करूण रस के बाद श्रृंगार एवं वीर रस की ही प्रधानता है। श्रृंगार एवं वीर रस प्रभाव वैशम्य रखते हुये भी एक–दूसरे के पूरक है। वीरता शक्ति का अक्षय स्रोत है तो श्रृंगार भोग अतिशयय। जीवन के पुरूषार्थ वीरता पर ही निर्भर हैं। वीरता की उत्पत्ति उत्साह से होती है। भरतमुनि ने इसका निरूपण करते हुये लिखा हैः–

'अथ वीरो नाम उत्तम प्रकृतिरूत्साहात्मक'

भानुदत्त के अनुसार अच्छी तरह से प्रस्फुटित उत्साह या सम्पूर्ण इन्द्रियों का प्रहर्श या प्रफुल्लता वीर रस है। आचार्य शुक्ल ने उत्साह की व्याख्या करते हुये कहा है कि उत्साह में कष्ट या हानि सहन करने की दृढ़ता के साथ–साथ कर्म में प्रवृत्त के आनन्द का योग रहता है। साहस पूर्ण आनन्द की उमंग का नाम उत्साह है। उत्साह एक संयुक्त भाव है जिसमें कष्ट सहन की दृढ़ता, साहस, कर्तव्यपालन की उमंग आदि का बोध रहता है। उत्साहमूलक वीरता दैवीय गुण है, उसका भौतिक आधार तो शरीर है किन्तु इसका मूल आत्मबल, आत्मविश्वास और आत्मगौरव है। इसके अभाव में बलवान व्यक्ति भी कायर एवं पुरूषार्थहीन हो जाता है जबकि शारीरिक सामर्थ्य के अभाव में भी इस गुण के कारण व्यक्ति वीर, निर्भीक और अद्‌भुत कार्य कर सकने की शक्ति रखता है। श्रृंगार रस के लिये नायक–नायिका, करूण रस के लिये मातृ–पुत्र–पति आदि, वात्सलय के लिये पुत्र–पुत्री आदि की स्थिति आवश्यक है लेकिन वीर रस इसका अपवाद है, इसका आलम्बन निर्दिष्ट नहीं है, केवल युद्ध में ही नहीं बल्कि इसके अन्य भेदों में भी आलम्बन की प्रत्यक्ष धारणा का अभाव होता है। इसका अर्थ यह नहीं कि वीर रस का 'विभाव' नहीं है या उसमें विभाव की धारणा रहने पर भी इसकी प्रधानता नहीं होती। इसमें तो पौरूष और पराक्रम का ध्यान प्रधान रहता है। शुक्ल जी के शब्दों में –

''किसी शत्रु के विरूद्ध यात्रा के समय किसी योद्धा के हृदय में जो उमंग होती है, उसमें अपने पराक्रम का ध्यान रहता है शत्रु का नहीं।'' इसीलिये शुक्ल जी ने उत्साह के आलम्बन में युद्ध, दान, दया, धर्म आदि के महान कर्म को स्वीकार किया है। वीर रस तभी पुष्ट होता है जब युद्ध दया, दान, धर्म का ऐसा महान कार्य उपस्थित हो जिसको करना साधारण लोगों के लिये बड़ा कठिन और विकट जान पड़े। वीरता के दिव्य गुणों के कारण व्यक्ति उसे शीर्ष सिरोधार्य करता है। अतः वीरता अन्य रसों के विपरीत आलम्बन प्रधान न होकर आत्मभाव प्रधान होता है। वीर रस का आश्रय सभी नहीं हो सकते क्योंकि जिस विकराल और भयानक परिस्थितियों में वीर रस का विकास होता है, उस परिस्थिति में सर्वसाधारण भयभीत होकर कर्तव्य से परान्मुख हो जायेंगे, अर्थात् वीर रस का आलम्बन भी अजेय शत्रु, परिस्थिति या स्थिति होती है।

''फूंक दो उस राष्ट्र को जहां स्वाभिमान पर मर–मिटने वाले पुरूष नहीं, आग लगा दो उस देश में जहां पतिव्रता की रक्षा के लिये धधकती आग में अपने को झोंक देने वाली स्त्रियां नहीं और पीस दो उस समाज को जो अपना अधिकार दूसरों को सौंपकर बंधे हुये श्वॉन की तरह याचक आखों से उसकी ओर देखता हो। मानव तूफान है जिसके उठने पर समग्र स्रृष्टि हिल उठती है। मानव भूडोल है जिसके डोलने से ससागारा पृथ्वी कांप उठती है और मानव बज्र है जिसकी कठोर ध्वनि से आकाश का कोण–कोण दहल उठता है, मानव समुद्र पी गया, मानव ने सूर्य के रथ को रोक लिया, ब्रह्मांड को परिमित कर अपने मस्तिष्क में भर लिया, फिर भी चित्तौड़ चुप है, चुप है शत्रुदल के वक्षस्थल को चीरकर रक्त चूसने वाली पुस्तैनी हिंसावृत्ति और चुप है बैरियों के सिर पर तलवारों के साथ घूमने वाली मृत्यु''। रानी ने दरबारियों पर तीक्ष्ण दृष्टि डाली, सारा दरबार स्तब्ध, नीरव और निश्चल। वीर सती ने लम्बी सांस ली भावनाओं के संघर्ष से वाणी गरज उठी–'तृणं शूरस्य जीवितम्' अर्थात शूर जीवन जो तृण समझता है। हथियारों के घर्षण में, तलवारों की चकाचौंध में और लड़ते हुये वीरों के अव्यक्त कोलाहल में स्वाभिमान की रक्षा धीर करते हैं अधीर नहीं, मृत्यु के खुले हुये मुख के सामने क्रुद्ध विषधरों के फणों को रौंदते हुये सपूत चलते हैं कपूत नहीं, अपने पैरों की धमक से पृथ्वी को कंपाते हुये भाले–बरछों की तीव्र नोकों से सीना अड़ाकर रण–यात्रा पुरूष करते हैं।''

उपरोक्त गद्यांश श्याम नारायण पाण्डे जी की पुस्तक जौहर का है। इस उद्धरण का यहां उल्लेख करने का केवल यह कारण है कि इस तरह की ललकार से कायरों में भी एक बार सहसा वीरता का संचार हो सकता है और कर्तव्य मार्ग पर बढ़ सकता है।

प्राचीन ग्रंथों या उन पर आधारित ग्रंथों का अनुशीलन किया जाये तो हमें विज्ञान की ऐसी जानकारियां मिलती हैं जो मनीषियों के वैज्ञानिक ज्ञान की ऊँचाइयों की ओर संकेत करती हैं। भारतीय मनीषियों ने भविष्य की वैज्ञानिक उपलब्धियों की जो परिकल्पना की

थी उसे कथा रूप में गढ़ दिया गया ताकि जनसामान्य भी उस ज्ञान को प्राप्त कर सके। ऐसा भी नहीं कि पुराणों में वर्णित प्रत्येक मनोभाव कल्पना ही है, उसमें सत्य का पुट भी है, लेकिन ये असम्भव इसलिये लगती हैं क्योंकि वे आज के मानव मस्तिष्क की पकड़ तक अभी तक नहीं पहुंची हैं।

डा0 विष्णुदत्त शर्मा ने अपनी पुस्तक 'रामासुर संग्राम' में उल्लेखित किया कि पहले भगवान श्री कृष्ण के सुदर्शन चक्र को मात्र कल्पना माना जाता था लेकिन जब अफ्रीका के कुछ कबीले के लोगों द्वारा उपयोग में लाये जाने वाले लकड़ी के अस्त्र 'बूमरैंग' का पता चला तो लोग सुदर्शन चक्र के अस्तित्व पर भी थोड़ा–बहुत विश्वास करने लगे। 15वीं–16वीं शताब्दी में विमान या आकाश में युद्ध एक कल्पना थी किन्तु अब वैज्ञानिक सत्य है। मत्स्य पुराण में मय दानव द्वारा अंतरिक्ष में 'त्रिपुर' नगर का बसाना तथा अंतरिक्ष युद्ध का वर्णन है जो अब साकार हो चुका है, रामचरित मानस में इच्छा मात्र से चलने वाले पुष्पक विमान की तुलना आधुनिक रिमोट कंट्रोल से चलने वाले चालक रहित विमानों से सहज ही की जा सकती है। आत्मरक्षा, प्राप्ति का संरक्षण एवं अहम की तुष्टि युद्ध के कारण माने जा सकते हैं। शारीरिक शक्ति के विकास के साथ ही मनुष्य नये–नये अस्त्र–सस्त्र की खोज में जुटा रहा, यह एक शुद्ध वैज्ञानिक परंपरा है, यही कारण है कि परशुराम के फरसे को धनुष–बाण सम्मुख कुंठित होना पड़ा। एक पीढ़ी के हथियार बने तभी अगली पीढ़ी के हथियारों की कल्पना की जाने लगी। महाभारत के भीष्म पर्व में वर्णन है कि उस समय के अस्त्र–शस्त्रों के प्रयोग के बाद भूकम्प आ जाता था, महासागर उफन कर अपनी सीमाएं तोड़ देते थे, तीव्र वेग की आंधी के कारण वृक्ष टूट जाते थे तथा बिना धुएं की अग्नि ज्वाला निकलती थी। इसकी तुलना 1945 के हिरोशिमा और नागासाकी पर गिराये जाने वाले परमाणु बम से की जा सकती है। परमाणु बम के फलस्वरूप धूल भरी आंधी चली, बड़ी–बड़ी नदियों का जल स्तर बदल गया, फसलें सूख गयीं, अधिकांश लोग या तो मारे गये या असहनीय ध्वनि और रेडियोएक्टिविटी के कारण अंधे–बहरे या अपाहिज हो गये।

वैदिक कालीन सैन्य इतिहास में विरोधी जन–जातियों में होने वाले 'दस राजाओं का युद्ध' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। परूस्नी नदी (रावी) के किनारे सुदास के नेतृत्व में 'भरत जन' ने दस राजाओं की प्रसंधियों के विरूद्ध युद्ध करके उसको पराजित किया। प्रसंधीय सेना अपनी व्यूह रचना ठीक करने में ही लगी थी कि राजा सुदास ने पहल करते हुए उन पर आक्रमण कर दिया। इस अचानक किये गये आक्रमण का वेग इतना अधिक था कि दस राजाओं की सेना इसका सामना नहीं कर सकी। इसके पश्चात सुदास ने विरोधी सेना पर रथों द्वारा सामने से तथा पीछे से भी आक्रमण करवाया क्योंकि पौथी दिशा में रावी नदी थी इसलिए दस राजाओं की सेना चारों ओर से घिर गयी और कहीं से भी बच कर निकल नहीं सकी। बड़ी संख्या में उसके सैनिक हताहत हुए। इस युद्ध में अणु और द्रह्यू जन के राजा नदी में डुबो दिये गये तथा एक और राजा/प्रधान रण भूमि में मारा गया। इस दस राजाओं के युद्ध में युद्ध के एक और सिद्धान्त आश्चर्य का उत्तम प्रयोग किया गया। जो कि आज युद्ध में विजय का एक बहुत ही महत्वपूर्ण कारक माना जाता है।

मानस में त्याग की जो भावना कैकेयी और मंथरा ने दिखाई उसकी कोई और मिसाल हो ही नहीं सकती, क्योंकि यदि उनके हृदय में मानवता के कल्याण की बात न आयी होती तो वह केवल यह वर माँगने के लिए कैकेयी से कह सकती थी कि वह अपने पुत्र भरत को राजा बनाने के लिए कहे, लेकिन यदि श्री राम वन न जाते, दक्षिण के वन जातियों से उनका सम्पर्क न होता तो शायद रावण का पराभाव न होता जो कि तत्कालीन ऋषियों का लक्ष्य था। मानस में कैकेयी को पापिन, कुलकलंकिनी, दुर्बुद्धि, अभागिनी आदि अनेक विशेषणों से लांछित किया गया, लेकिन राष्ट्रहित के लिए कैकेयी ने इतना त्याग किया कि कुलकलंकिनी कहलाने से भी परहेज नहीं किया। यह एक ऐसा उदाहरण है कि जिस किसी भी देश की सेना और सैनिकों में इस तरह के त्याग और बलिदान का हौसला होगा उसकी जीत अवश्यंभावी है।

कई महत्वपूर्ण और न्याय संगत बातें जो प्राचीन भारतीय युद्धों में देखने को मिलती थी पर आज कल के संघर्षों में तो इसका कहीं भी पालन होते नहीं दिखता। मानस में युद्ध के ऐसे नियमों का पालन किया जाता था जो उस समय के युद्धों के उच्च नैतिक भावनाओं से प्रेरित था। उस काल में जिन मुख्य नियमों का पालन किया जाता था वे इस प्रकार हैं :–

1. राजाओं को बिना पूर्व सूचना के युद्ध नहीं करना चाहिए। आज की भांति शत्रु देश पर अचानक आक्रमण नहीं किया जाता थाः–
   मंत्र कहऊ निज मति अनुसारा।
   दूत पठाइय बालि कुमारा ।।
2. समान सैनिक से ही युद्ध करना। जैसे एक कवचयुक्त सैनिक को कवच विहीन सैनिक से नहीं लड़ना चाहिए।
3. युद्ध बंदियों से सभ्यतापूर्ण एवं दयापूर्ण व्यवहार करना।
4. शरीर के निचले हिस्से पर आघात नहीं करना चाहिए। मानस में अनेक उदाहरण हैं जिसमें केवल सीने पर आघात का वर्णन किया गया है।
5. शत्रु पक्ष के असैनिक व्यक्तियों से नहीं लड़ना चाहिए।
6. रात्रि में युद्ध नहीं करना चाहिए।
7. जिस शत्रु का शस्त्र टूट जाय या गिर जाय या आत्मसमर्पण करने वाले शत्रु से नहीं लड़ना चाहिए।
8. रण में पीठ दिखाने वालों पर आघात नहीं करना चाहिए :–
   जो न होई बल घर फिरि जाहू।
   समर विमुख मैं हतउ न काहू।।
9. सूचना देने वाले शत्रु के दूत को मारना नहीं चाहिए।

आज के तथाकथित सभ्य समाज में इन नियमों एवं नैतिकताओं का कहीं भी रंच मात्र भी पालन होता नहीं दिखता जबकि युद्ध और समाज के विकास के

साथ इन नियमों और नैतिकताओं का यदि पालन किया जाय तो आज के युद्धों में भी हताहतों की संख्या को नियंत्रित और युद्धों को समग्र होने से बचाया जा सकता है।

त्याग, तपस्या और सैनिकों के मनोबल को बढ़ाने तथा सैनिकों में स्वाभिमान वृद्धि करने का भाव उत्पन्न करने के लिए माखन लाल चतुर्वेदी के पुष्प की अभिलाषा का वर्णन आवश्यक हैः–

चाह नहीं मैं, सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ।
चाह नहीं मैं, प्रेमी–माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ।
चाह नहीं मैं, सम्राटों के शव पर, हे हरि डाला जाऊँ।
चाह नहीं मैं, देवों के सर पर चढ़ भाग्य पर इतराऊँ।

मुझे तोड़ लेना वन माली,
उस पथ में तुम देना फेंक,
मातृ भूमि पर शीष चढ़ाने,
जिस पथ पर जायें वीर अनेक।

यहां सैनिकों को देवताओं, सम्राटों सब के ऊपर रखा गया है। सैनिकों के साथ इस प्रकार की भावना रखने पर उनमें निश्चित ही राष्ट्र के प्रति प्रेम रक्त संचार में तेजी आना स्वाभाविक लगता है।

इसी प्रकार श्यामनारायण पाण्डेय जी की ''हल्दी घाटी'' वीर रस प्रधान काव्य है इस काव्य के माध्यम से पाण्डेय जी ने विदेशी दमन–चक्र के संकट काल में कवि कर्म का निर्वहन करते हुए देश के प्रति अपनी भावना का निवेदन किया है। इस वाक्य के माध्यम से कवि ने कुछ पात्रों को उनके कर्म के अनुसार अमर कर दिया। पुरोहित का बलिदान, भामाशाह का अनुपम त्याग और चेतक का नाम स्वर्ण अक्षरों में अंकित करने योग्य है। 'चेतक का चबूतरा' अब तक मेवाड़ के दर्शनीय स्थलों में से एक है। हल्दीघाटी के युद्ध में चेतक और राणा प्रताप की तलवार की गति का निरीक्षण कीजिएः–

रण–बीच चौकड़ी भर–भर कर
चेतक बन गया निराला था,
राणा प्रताप के घोड़े से
पड़ गया हवा का पाला था।
जो तनिक हवा से बाग हिली,
लेकर सवार उड़ जाता था
राणा की पुतली फिरी नहीं
तब तक चेतक मुड़ जाता था।

युद्धों में गतिशीलता के सिद्धान्त का वर्णन करता उपरोक्त उद्धरण यह सिद्ध करता है कि हिन्दी साहित्य में रक्षा से सम्बन्धित कई सिद्धान्तों का वर्णन किसी न किसी रूप में विद्यमान है।

वीरकाव्य की बात हो और दिनकर जी की सूचनाओं का उल्लेख न हो तो शायद विमर्श ही अधूरा रहेगा। दिनकर जी के काव्य की महत्वपूर्ण बात है–ओज। यह ओज राष्ट्रीय चेतना और मानवता के उद्धार की भावना से युक्त होकर स्पृहणीय बन गया है। उस समय विदेशी दमन–चक्र पूरी क्रूरता के साथ चल रहा था जनता क्षुब्ध और त्रस्त थी फलस्वरूप उस काल के कुछ अन्य प्रसिद्ध कवियों में जहां अनेक प्रकार की निराशा ने जन्म लिया वहीं दिनकर में उसकी प्रतिक्रिया अमर्ष बनकर उमड़ी जिससे राष्ट्रीय आंदोलन को बल मिला।

कुरूक्षेत्र मनुष्य की आधार भूत समस्याओं का विवेचन करने वाला एक उत्कृष्ट चिंतन प्रधान काव्य है। भीष्म पितामह कौरव व पाण्डव दोनों के पूज्य थे लेकिन जीवन भर वे कौरवों के साथ रहे। वे आजन्म ब्रह्मचारी, महान नीतिज्ञ, त्यागी और महा सेनानी थे। वे सच्चे आर्य थे। उनके मुख से निकला एक एक शब्द उनके अन्तःकरण के ओज का परिचायक है। उनका जीवन दर्शन एक सैनिक का जीवन दर्शन है। इसी प्रकार रश्मि रथी का वह सर्ग जब श्री कृष्ण कौरवों को समझाने आते हैं, अत्यंत ही ओजपूर्ण और उद्वेलित कर देने वाला लगता है :–

वर्षों तक वन में घूम–घूम
बाधा विघ्नों को चूम–चूम
सह धूप घाम पानी पत्थर
पाण्डव आये कुछ और निखर
सौभाग्य न सब दिन सोता है
देखें आगे क्या होता है
मैत्री भी राह बताने को
सबको सुमार्ग पर लाने की
दुर्योधन को समझाने को
भीषण विध्वंश बचाने को
भगवान हस्थिनापुर आये
पाण्डव का संदेशा लाये
दो न्याय अगर तो आधा दो
पर इसमें भी यदि बाधा हो
तो दे दो केवल पांच ग्राम
रखो अपनी धरती तमाम
हम वहीं खुशी से खायेंगे
परिजन पर असि न उठायेंगे
दुर्योधन वो भी दे न सका
आशीष समाज की ले न सका
उल्टे हरि को बांधने चला
जो था असाध्य साधने चला
सच है जब नाश मनुज पर छाता है
पहले विवेक मर जाता है
हरि ने भीषण हुंकार किया
अपना स्वरूप विस्तार किया
डगमग–डगमग दिग्गज डोले
भगवान कुपित होकर बोले
जंजीर बढ़ाकर साध मुझे
हां हां दुर्योधन बांध मुझे
यह देख गगन मुझमें लय है
यह देख पवन मुझमें लय है
मुझमें विलीन झंकार सकल
मुझमें लय है संकार सकल
अमरत्व फूलता है मुझमें
संघार झूलता है मुझमें
उदयाचल मेरा दीप्त भाल

भूमण्डल वक्ष स्थल विशाल
भुज परिधि– बंध को घेरे हैं
मैनाक मेरू पग मेरे हैं
दिपते जो ग्रह नक्षत्र निकर
सब हैं मेरे मुख के अंदर
दृग हो तो दृश्य अकांड देख
मुझमें सारा ब्रहमाण्ड देख
चर–अचर जीव, जग, क्षर–अक्षर
नश्वर मनुष्य सुर जाति अमर
शत कोटि सूर्य, क्षतिकोटि चंद्र
शत कोटि सरित, सर सिंधु मंद्र
शत कोटि विष्णु ब्रम्हा महेश
शत कोटि विष्णु जलपति धनेश
शत कोटि रूद्र शत कोटि काल
शत कोटि दंड धर लोकपाल
जंजीर बढ़ा कर साध इन्हें
हां हां दुर्योधन बांध इन्हें
भूलोक, अतल पाताल देख
गत और अनागत काल देख
यह देख जगत का आदि सृजन
यह देख महाभारत का रण
मृतकों से पड़ी भू है
पहचान कहां इसमें तू है
अंबर में कुंतल जाल देख
पद के नीचे पाताल देख
मुट्ठी में तीनों काल देख
मेरा स्वरूप विकराल देख
सब जन्म मुझी से पाते हैं
फिर लौट मुझी में आते हैं
जिह्वा से कढ़ती ज्वाल सघन
सांसों में पाता जन्म पवन
पड़ जाती मेरी दृष्टि जिधर
हसनें लगती है सृष्टि उधर
मैं जभी मूंदता हूँ लोचन
छा जाता चारों और मरन
बांधने मुझे तू आया है
जंजीर बड़ी क्या लाया है
यदि मुझे बांधना चाहे मन
तो पहले बांध अनंत गगन
सूने को साध न सकता है
वो मुझे बांध क्या सकता है
हित बचन नहीं तूने माना
मैत्रि का मूल्य न पहचाना
तो ले मैं भी अब जाता हूँ
अंतिम संकल्प सुनाता हूँ
यचना नहीं अब रण होगा
जीवन जय याकि भरण होगा
टकरायेगें नक्षत्र निकर
बरसेगी भू पर वहनि प्रखर
फण शेषनाग का डोलेगा
विकराल काल मुख खोलेगा
दुर्योधन रण ऐसा होगा
फिर कभी नहीं जैसा होगा
भाई पर भाई टूटेंगे
विष बाण बूंद से छटेंगे
वायस–श्रृंगाल सुख लूटेंगे
सौभाग्य मनुज के फूटेंगे
आखिर तू भूषायी होगा
हिंसा का परदायी होगा
थी सभा सन्न, सब लोग डरे
चुप थे या थे बेहोश पड़े
केवल दो नर न अघाते थे
धृतराष्ट्र विदुर सुख पाते थे
कर जोर खड़े प्रमुदित निर्भय
दोनों पुकारते थे जय जय ..... जय जय

निष्कर्ष

इस प्रकार अंत में मैं यही कहना चाहूँगा कि हिंदी साहित्य के प्रत्येक काल एवं वेद पुराणों से लेकर आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों की रचनाओं में रक्षा विषयक संदर्भो का बहुत ही विषद एवं मौलिक वर्णन मिलता है। निश्चय ही ऐसे साहित्य और रचनाओं का सैनिकों एवं योद्धाओं का रणभूमि में कौशल को निखारने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है तथा कई बार ऐसा भी प्रतीत होता है हिन्दी साहित्य रक्षा अध्ययन का दिशाबोधक एवं मार्गदर्शक भी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *जौहर – श्याम नारायण पाण्डेय, विश्व विद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी।*
2. *वीर काव्य परम्परा और श्याम नारायण पाण्डेय – डा0 रामानन्द सिंह, अनुभव प्रकाशन, 105/727, श्रीनगर, कानपुर–1.*
3. *रामासुर संग्राम– डा0 विष्णु दत्त शर्मा, शोध प्रकाशन एकादमी, 5/48, वैशाली गाजियाबाद, 1998*
4. *राम चरित मानस– तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर।*
5. *कुरूक्षेत्र– राम धारी सिंह दिनकर, राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली।*
6. *संस्कृति के चार अध्याय– राम धारी सिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–1 (1956)*
7. *आधुनिक हिंदी प्रबन्ध काव्यों में रस शास्त्रीय विवेचन – डा0 भगवान लाल साहनी, सर्वोदय वांगमय, पोस्ट एम0आई0टी0, ब्रह्मपुरा, मुजफ्फर नगर (बिहार)।*
8. *प्राचीन कवि – विश्वम्भर 'मानव', लोक भारती प्रकाशन, पहली मंजिल दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–1*
9. *आधुनिक कवि– विश्वम्भर 'मानस' व डा0 राज किशोर शर्मा, लोक भारती प्रकाशन, पहली मंजिल दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–1*